चोल काल में कला एवं स्थापत्य का विकास

प्रस्तावना

चोल वंश जो लगभग 9वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में शासन करता रहा, भारतीय इतिहास में कला और स्थापत्य के क्षेत्र में एक स्वर्णिम युग था। विजयालय द्वारा 850 ईस्वी के आसपास स्थापित इस वंश ने राजराज चोल प्रथम और राजेन्द्र चोल प्रथम के शासनकाल में अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया। चोल शासकों ने केवल राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि कला, स्थापत्य और संस्कृति के विकास में भी अभूतपूर्ण योगदान दिया। तंजावुर का वृहदेश्वर मंदिर, गंगैकोंडचोलपुरम का मंदिर और दारासुरम का ऐरावतेश्वर मंदिर चोल स्थापत्य कला के अद्वितीय उदाहरण हैं जो आज भी भारतीय शिल्प कौशल की उत्कृष्टता के प्रतीक माने जाते हैं। चोल कला में द्रविड़ शैली का पूर्ण विकास हुआ और कांस्य मूर्तिकला ने अपने सर्वोच्च स्तर को छुआ।

चोल कला का ऐतिहासिक विकास

चोल कला का विकास पल्लव और पांड्य कला परंपराओं से प्रभावित था परन्तु चोल शिल्पकारों ने इन परंपराओं को आगे बढ़ाते हुए अपनी विशिष्ट शैली विकसित की। प्रारंभिक चोल काल में विजयालय चोलेश्वर मंदिर का निर्माण हुआ जो पल्लव प्रभाव दर्शाता है। परन्तु राजराज चोल प्रथम के शासनकाल (985-1014 ईस्वी) में चोल कला अपनी पूर्ण परिपक्वता को प्राप्त हुई। उनके पुत्र राजेन्द्र चोल प्रथम (1014-1044 ईस्वी) ने इस परंपरा को और आगे बढ़ाया। बाद के चोल शासकों विशेषकर कुलोत्तुंग प्रथम और राजराज द्वितीय के काल में भी स्थापत्य गतिविधियां जारी रहीं। चोल शासक शैव धर्म के अनुयायी थे और उन्होंने शिव मंदिरों के निर्माण को विशेष प्रोत्साहन दिया।

चोल मंदिर स्थापत्य की प्रमुख विशेषताएं

विशाल विमान और पिरामिडीय संरचना

चोल मंदिर स्थापत्य की सबसे विशिष्ट पहचान इसका विशाल और भव्य विमान है। विमान मंदिर का मुख्य गर्भगृह के ऊपर बना शिखर है जो पिरामिडीय आकार का होता है। तंजावुर का वृहदेश्वर मंदिर जिसे राजराजेश्वर मंदिर भी कहते हैं, का विमान लगभग 216 फीट ऊंचा है। यह विमान 13 मंजिलों में बना है और इसके शिखर पर एक विशाल कलश स्थापित है जिसका वजन लगभग 80 टन है। यह कलश एक ही पत्थर से बना है। इतनी ऊंचाई पर इतने भारी पत्थर को स्थापित करना उस समय की तकनीकी कुशलता का अद्भुत प्रमाण है। विमान की दीवारों पर अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां उकेरी गई हैं।

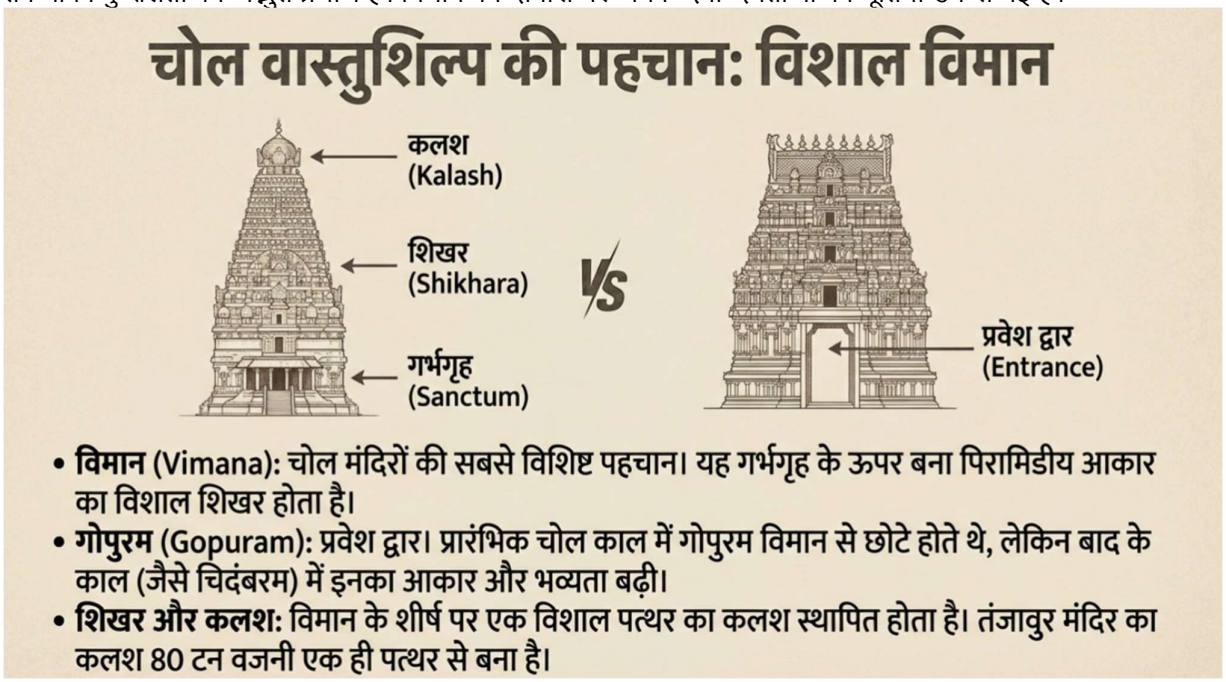

गोपुरम का विकास

चोल मंदिरों में प्रवेश द्वार पर बने गोपुरम एक महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रारंभिक चोल मंदिरों में गोपुरम विमान से छोटा होता था परन्तु बाद के काल में गोपुरम का आकार बढ़ता गया। गोपुरम पिरामिडीय संरचना है जो अनेक मंजिलों में बनी होती है। इस पर रंगीन मूर्तियां और अलंकरण होते हैं। चिदंबरम मंदिर के गोपुरम इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गोपुरम केवल प्रवेश द्वार नहीं बल्कि मंदिर की भव्यता का प्रतीक भी था।

विस्तृत प्रांगण और मंडप

चोल मंदिर परिसर अत्यंत विशाल होते थे। मंदिर के चारों ओर ऊंची दीवारें होती थीं जिनमें भव्य गोपुरम बने होते थे। प्रांगण में अनेक मंडप निर्मित किए जाते थे। ये मंडप धार्मिक अनुष्ठानों, नृत्य प्रस्तुतियों और सभाओं के लिए उपयोग होते थे। तंजावुर मंदिर का नंदी मंडप विशाल है जिसमें एक ही पत्थर से बना लगभग 16 फीट लंबा नंदी की प्रतिमा है। स्तंभों पर सुंदर अलंकरण और मूर्तियां उकेरी गई हैं। कुछ स्तंभ संगीतमय हैं जिन्हें बजाने पर विभिन्न स्वर निकलते हैं।

जल संरचनाएं और सुविधाएं

चोल मंदिरों में जल व्यवस्था का विशेष प्रावधान था। मंदिर परिसर में कुंड या तालाब होते थे जहाँ श्रद्धालु स्नान करते थे। कुम्भकोणम के महामहम तालाब जैसे विशाल जलाशय निर्मित किए गए। मंदिर परिसर में अनेक सहायक मंदिर भी बनाए जाते थे जो अन्य देवी-देवताओं को समर्पित होते थे। इससे मंदिर एक धार्मिक परिसर के रूप में विकसित होता था।

निर्माण सामग्री और तकनीक

चोल मंदिर मुख्यतः ग्रेनाइट पत्थर से बने हैं जो अत्यंत कठोर और टिकाऊ है। विशाल पत्थरों को काटना, तराशना और उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना अत्यंत कठिन कार्य था। तंजावुर मंदिर के निर्माण में इस्तेमाल किए गए कुछ पत्थरों का वजन 50 से 80 टन तक है। इन्हें बिना आधुनिक तकनीक के इतनी ऊंचाई तक ले जाना और स्थापित करना चोल इंजीनियरों की कुशलता का प्रमाण है। ऐसा माना जाता है कि पत्थरों को ऊपर ले जाने के लिए मंदिर के पास से शुरू होने वाली एक लंबी ढलान का निर्माण किया गया था जिस पर हाथियों की सहायता से पत्थरों को खींचा जाता था।

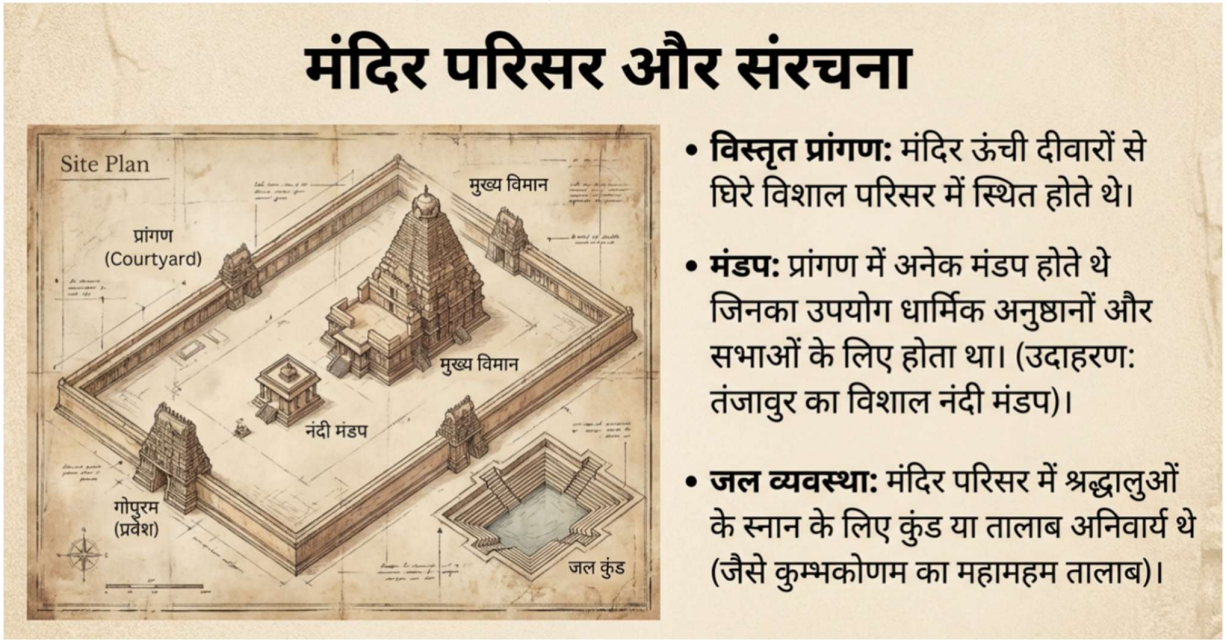

प्रमुख चोल मंदिर

तंजावुर का वृहदेश्वर मंदिर

राजराज चोल प्रथम द्वारा 1010 ईस्वी में निर्मित यह मंदिर चोल स्थापत्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह भगवान शिव को समर्पित है और इसे यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल घोषित किया गया है। मंदिर का विमान संपूर्ण द्रविड़ शैली में बना है और इसकी छाया

पृथ्वी पर नहीं पड़ती जो एक वास्तुशिल्प चमत्कार है। गर्भगृह में विशाल शिवलिंग स्थापित है। मंदिर की दीवारों पर 108 करण (नृत्य मुद्राओं) की मूर्तियां उकेरी गई हैं जो भरतनाट्यम के विकास में महत्वपूर्ण हैं। अभिलेखों से पता चलता है कि मंदिर में 400 देवदासियां और अनेक संगीतकार नियुक्त थे।

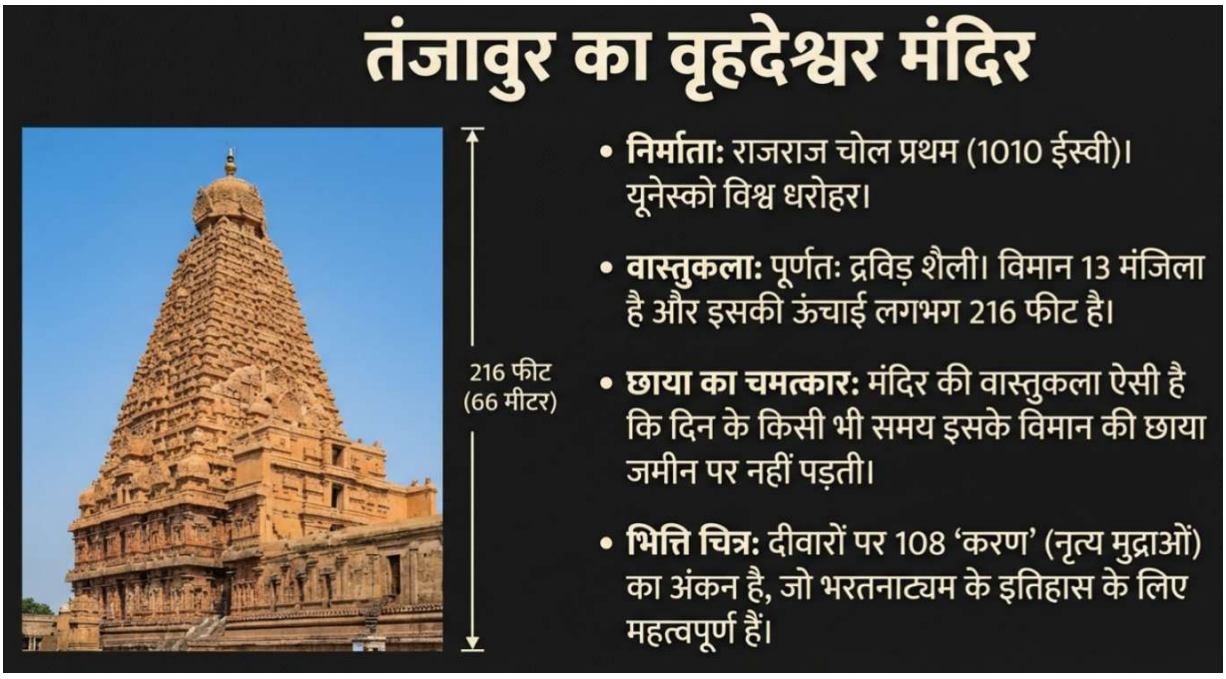

गंगैकोंडचोलपुरम का मंदिर

राजेन्द्र चोल प्रथम ने अपनी नई राजधानी गंगैकोंडचोलपुरम में एक भव्य मंदिर का निर्माण करवाया। यह मंदिर भी शिव को समर्पित है और इसकी शैली तंजावुर मंदिर से प्रेरित है। इसका विमान 185 फीट ऊंचा है। मंदिर की मूर्तिकला अत्यंत सुंदर है और यह भी विश्व धरोहर स्थल है। यह मंदिर राजेन्द्र चोल की गंगा घाटी तक की विजय का स्मारक था।

दारासुरम का ऐरावतेश्वर मंदिर

राजराज द्वितीय द्वारा 12वीं शताब्दी में निर्मित यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित है। यद्यपि यह आकार में छोटा है परन्तु इसकी शिल्प कला अत्यंत उत्कृष्ट है। मंदिर के स्तंभों पर अलंकरण इतना बारीक है कि प्रत्येक आकृति जीवंत प्रतीत होती है। मंदिर में पत्थर से बना एक रथ है जिसके पहिए घूमते हैं। यह भी विश्व धरोहर स्थल है।

चिदंबरम का नटराज मंदिर

यह मंदिर नृत्य के देवता नटराज को समर्पित है। इसमें चार विशाल गोपुरम हैं। मंदिर का कनक सभा (स्वर्ण सभा) जहाँ नटराज की मूर्ति स्थापित है, विशेष महत्व रखता है। मंदिर की वास्तुकला में वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग किया गया है। यह मंदिर चोल काल में नृत्य और संगीत के संरक्षण का केंद्र था।

चोल मूर्तिकला की विशेषताएं

कांस्य मूर्तियों की उत्कृष्टता

चोल काल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि कांस्य मूर्तिकला में है। कांस्य प्रतिमाएं सीर पर्ड्यू (lost wax) तकनीक से बनाई जाती थीं। इस विधि में पहले मोम से मूर्ति का प्रारूप बनाया जाता था फिर उस पर मिट्टी की परत चढ़ाई जाती थी। जब इसे गर्म किया जाता था तो मोम पिघल जाता था और उसकी जगह तरल कांस्य डाला जाता था। ठंडा होने पर मिट्टी की परत हटा दी जाती थी और कांस्य मूर्ति तैयार हो जाती थी। चोल कांस्य मूर्तियां अपनी सजीवता, संतुलन और कलात्मक पूर्णता के लिए विश्वविख्यात हैं।

नटराज की प्रतिमा

चोल मूर्तिकला की सर्वोत्कृष्ट कृति नटराज (नृत्य करते हुए शिव) की प्रतिमा है। नटराज को आनंद तांडव करते हुए दिखाया गया है। उनके चार हाथ हैं - एक हाथ में डमरू है जो सृष्टि का प्रतीक है, दूसरे में अग्नि जो विनाश का प्रतीक है, तीसरा हाथ अभय मुद्रा में है और चौथा एक उठे हुए पैर की ओर इशारा करता है जो मोक्ष का प्रतीक है। नटराज एक पैर से अपस्मार पुरुष (अज्ञान) को कुचलते हैं और दूसरा पैर उठा हुआ है। पूरी मूर्ति एक प्रभामंडल (अग्नि चक्र) से घिरी है। यह मूर्ति केवल कलात्मक नहीं बल्कि गहन दार्शनिक प्रतीकवाद से भरी है। इसमें सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह - शिव की पंच क्रियाओं को दर्शाया गया है।

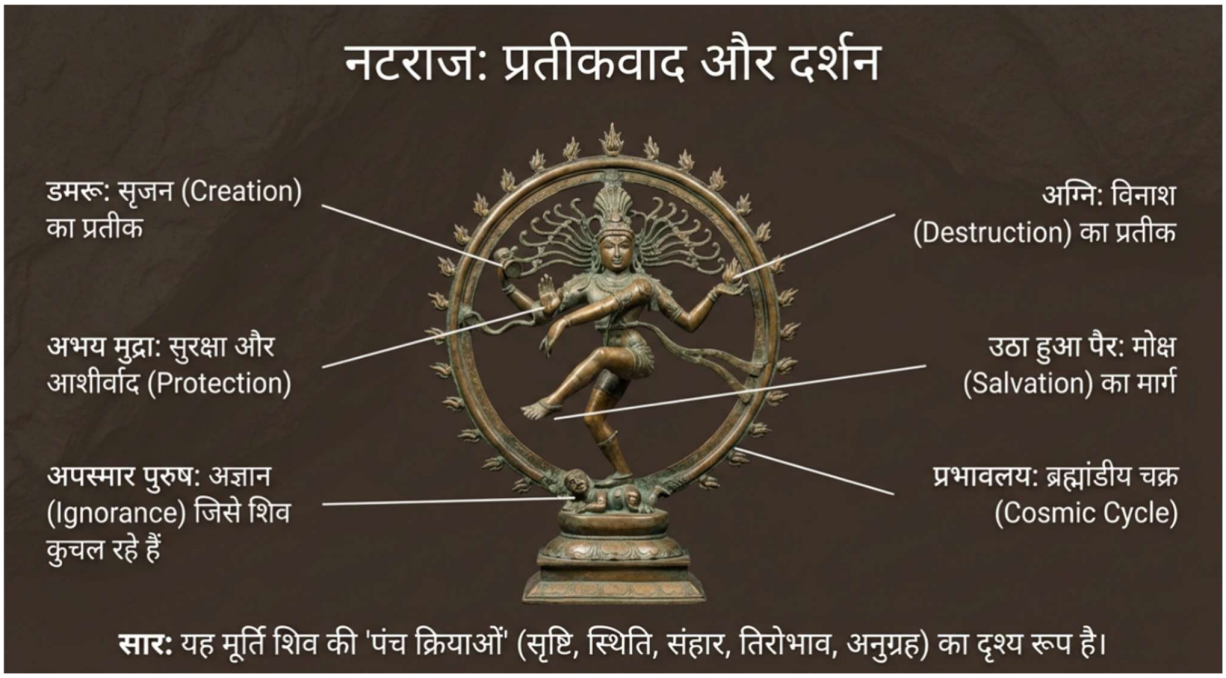

देवी-देवताओं की मूर्तियां

चोल कांस्य में शिव, पार्वती, अर्धनारीश्वर, सोमास्कंद (शिव, पार्वती और स्कंद), विष्णु, कृष्ण और अन्य देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियां बनाई गईं। पार्वती की मूर्तियां अत्यंत कोमल और सुंदर हैं। उन्हें त्रिभंग मुद्रा में दिखाया गया है जो स्त्री सौंदर्य का प्रतीक है। संत मूर्तियां भी बनाई गईं जिनमें नयनार और अलवार संतों को दिखाया गया है। ये मूर्तियां भक्ति भाव से ओतप्रोत हैं।

शारीरिक अनुपात और सौंदर्य

चोल मूर्तियों में शारीरिक अनुपात का पूर्ण ध्यान रखा गया है। मांसपेशियां, अंगों की बनावट और शरीर की मुद्रा बिल्कुल यथार्थवादी हैं। साथ ही आदर्शीकरण भी है जो दैवीय सौंदर्य को प्रकट करता है। अलंकरण, आभूषण और वस्त्रों को बारीकी से उकेरा गया है। मूर्तियों में गतिशीलता और संतुलन का अद्भुत समन्वय है।

पत्थर की मूर्तिकला

मंदिरों की दीवारों पर उकेरी गई पत्थर की मूर्तियां भी उत्कृष्ट हैं। तंजावुर मंदिर में करणों (नृत्य मुद्राओं) की 108 मूर्तियां भरतनाट्यम के विकास का आधार हैं। द्वारपाल, गंधर्व, अप्सरा और पौराणिक दृश्यों को अत्यंत जीवंत तरीके से उकेरा गया है। मूर्तियों में कथा कहने की क्षमता है और वे पौराणिक गाथाओं को दृश्य रूप देती हैं।

चोल चित्रकला

चोल काल में भित्ति चित्रकला का भी विकास हुआ। तंजावुर मंदिर में राजराज चोल के समय के भित्ति चित्र मिले हैं जो बाद में नायक काल के चित्रों से ढक गए थे। इन चित्रों में राजराज चोल और उनकी रानियों को शिव की पूजा करते हुए दिखाया गया है। नृत्य करती हुई अप्सराओं के चित्र भी हैं। रंगों की चमक आज भी बरकरार है। ये चित्र अजंता परंपरा से प्रभावित हैं परन्तु चोल शैली की विशिष्टता लिए हैं।

चोल कला का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व

चोल मंदिर केवल पूजा स्थल नहीं बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक केंद्र भी थे। मंदिरों में नृत्य, संगीत और शिक्षा की व्यवस्था थी। देवदासी प्रथा के माध्यम से नृत्य परंपरा का संरक्षण हुआ जिससे भरतनाट्यम का विकास हुआ। मंदिरों को भूमि दान में मिलती थी और वे कृषि और व्यापार में भी संलग्न रहते थे। अभिलेखों से पता चलता है कि तंजावुर मंदिर के पास 400 गांव थे जिनकी आय मंदिर के रखरखाव में खर्च होती थी। मंदिर शिक्षा के केंद्र भी थे जहाँ संस्कृत, तमिल और धार्मिक शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी।

चोल कला का प्रभाव और विरासत

चोल कला ने केवल तमिलनाडु तक सीमित नहीं रही बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया में भी इसका प्रभाव फैला। श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड, कंबोडिया और इंडोनेशिया में चोल शैली के मंदिर और मूर्तियां मिलती हैं। कंबोडिया का अंकोरवाट मंदिर चोल स्थापत्य से प्रभावित है। चोल कांस्य मूर्तियां आज भी विश्व की प्रमुख संग्रहालयों में संरक्षित हैं और भारतीय कला की उत्कृष्टता के प्रतीक मानी जाती हैं।

निष्कर्ष

चोल काल भारतीय कला और स्थापत्य के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय है। इस काल में द्रविड़ स्थापत्य शैली अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची और कांस्य मूर्तिकला ने विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त की। तंजावुर का वृहदेश्वर मंदिर मानव निर्मित विशालतम संरचनाओं में से एक है और नटराज की प्रतिमा भारतीय कला की सर्वोच्च उपलब्धि मानी जाती है।

चोल कला केवल धार्मिक अभिव्यक्ति नहीं थी बल्कि इसमें तकनीकी कौशल, वैज्ञानिक ज्ञान और कलात्मक प्रतिभा का संगम था। मंदिरों की वास्तुकला में गणितीय सटीकता, अनुपात का ज्ञान और इंजीनियरिंग कुशलता दिखाई देती है। मूर्तिकला में दार्शनिक गहराई और सौंदर्यबोध का सुंदर मिश्रण है।

समकालीन भारत के लिए चोल कला एक गौरवशाली विरासत है। यह दर्शाती है कि भारत में विज्ञान, कला और आध्यात्मिकता का समन्वित विकास हुआ था। चोल मंदिर आज भी जीवंत धार्मिक केंद्र हैं और लाखों श्रद्धालु इनके दर्शन करते हैं। विश्व धरोहर स्थल के रूप में इनकी अंतरराष्ट्रीय मान्यता भारतीय सभ्यता की उत्कृष्टता का प्रमाण है। चोल कला हमें सिखाती है कि सच्ची कला कालातीत होती है और युगों के बाद भी अपनी प्रासंगिकता और सौंदर्य बनाए रखती है।